 ISSN - 2250-1991

Research Paper Hindi

BACHCHAN KI AATM KATHA ME SAMAJ-BODH - JATI VISHES

बच्चन की आत्मकथा में समाज–बोध : जाति विशेष के संदर्भ में

डॉ गीता यादव | ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय कोसली

ABSTRACT

भारतीय समाज अपनी संरचना में अत्यंत जटिलताओं और विशमताओं से भरा हुआ है। बच्चन को क्षोभ और दुख इस बात का है कि व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन नहीं है। और इस असंतुलन का सबसे बड़ा कारण है – जाति–व्यवस्था। इस सामाजिक असंतुलन से देश का कितना नुकसान हुआ, इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। यह देखना कष्टदायक है कि समाज के एक वर्ग विशेष को केवल इस आधार पर समाज और देश की मुख्यधारा से काट दिया जाए कि उसका जन्म एक विशेष जाति में हुआ है। बच्चन की आत्मकथा से यह स्पश्ट है कि वे जाति–व्यवस्था जैसी इन कुप्रथाओं के मात्र दृश्टा नही हैं, वे भोक्ता भी हैं और चिंतक भी।

KEYWORDS | जाति–व्यवस्था, समाज–बोध, स्वतंत्रता, जाति–बहिष्कार।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बच्चन की आत्मकथा के लिए कहा था– 'इसमें केवल बच्चन जी का परिवार और उनका व्यक्तित्व ही नही उभरा है बल्कि उनके साथ समूचा काल और क्षेत्र भी अत्यंत जीवंत रूप में उभरकर सामने आ गए हैं।'[1] इसका प्रमुख कारण है– बच्चन का गहरा समाज–बोध। यद्धपि काव्य में बच्चन व्यक्तिवादी काव्यधारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं, पर उनकी कविताओं में भी समाज के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति हुई है– विशेषकर सामाजिक कुरितियों के प्रति तीव्र आक्रोश के रूप में। ऐसा इसलिए है कि उनका व्यक्ति–स्वातन्त्रय और आक्रोश उनके गहरे समाज बोध से पैदा हुआ है।

व्यक्ति के समाज के साथ कैसे संबंध होंगे, यह उसके स्वभाव पर निर्भर करता है कि उसका स्वभाव समझौतावादी है, तटस्थ है या क्रांतिकारी है। कबीरदास का एक दोहा है–

'सुखिया सब संसार है, खावै अरू सोवै।

दुखिया दास कबीर है जागै अरू रोवै।।'[2]

ये मात्र दो पंक्तियां नहीं हैं, ये दो प्रकार के व्यक्तियों के स्वभाव और संसार में उनकी स्थिति को स्पष्ट करती हैं। बीमार, वृद्ध और मृत व्यक्ति को देखकर सिद्धार्थ बुद्धत्व की ओर उन्मुख होते हैं और उन्हीं घटनाओं को हर रोज घटते देखकर भी हम में से बहुतों के मन में शमशान वैराग्य तक पैदा नहीं होता।

यह सारा संसार सुखी है– खाता–पीता है और निश्चित होकर सो जाता है, पर कबीरदास दुखी हैं और रात–दिन रोते रहते हैं। ऐसा भला क्यों है ? वो लोग जिनकी चेतना को घटनाओं ने झकझोरा नहीं है, वो लोग अस्तित्व का प्रश्न जिनके सम्मुख कभी पैदा नही हुआ, वे हमेशा सुखी रहते हैं, भले ही दर्शन उन्हे पशुवत माने। पर जो चेतनावान हैं, जो प्रश्न करते हैं, संदेह करते हैं, जीवन की अच्छी और बुरी घटनाएं जिन्हे प्रभावित करती हैं और प्रेरित करती हैं, जो सम समाज की स्थापना करना चाहते हैं– इसलिए हर तरह के Discrimination के खिलाफ हैं, वे दुखी हैं और दिन–रात चिंतन करते हैं। बच्चन इसी श्रेणी के व्यक्ति हैं, जो अपने समाज की विसंगतियों को महसूस करते हैं, उन पर प्रश्न खड़े करते हैं और सिर्फ चिंता करके नहीं रह जाते बल्कि समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। वे लिखते हैं– 'जाति–व्यवस्था से गठित – ग्रसित भी कहना अनुपयुक्त न होगा – समाज में व्यष्टि और समष्टि के संबंधों पर जब–जब मैंने सोचा है, क्षोभ से भर उठा हूँ। और क्षोभ का सबसे बड़ा कारण है कि– व्यक्ति को समाज के सहयोग की आवश्यकता होती है, अपने साधारण जीवन में भी, अपने दुख में भी। पर व्यक्ति को समाज से यह सहयोग लेने के लिए बड़ा महंगा मूल्य चुकाना पड़ता है। उसे अपनी स्वतंत्रता समाज के हाथों गिरवी रखनी पड़ती है।'[3]

स्वतंत्रता– जिसे मानवीय मूल्यों में सबसे बड़ा मूल्य माना गया है, राष्ट्र के संदर्भ में इसकी अहमियत होगी, पर समाज के संदर्भ में नहीं। समाज किसी स्वतंत्रता को न पसंद करता है, न अनुमति देता है। इसलिए जन–सामान्य न्यायालयों की अपेक्षा खाप पंचायतों से अधिक ड़रता है। बच्चन समाज की इन खाप पंचायतों तथा खाप जैसी मानसिकता वाले समाज का सूक्ष्मता और गहराई से विश्लेषण करते हैं –विषेशतः जाति–प्रथा से गठित–ग्रसित भारतीय हिंदू समाज के संदर्भ में। उनकी आत्मकथा के मुख्यतः प्रथम दो भागों में हिंदू समाज में व्याप्त जाति और धर्माधारित छूआछूत, भेद–भाव आदि का सविस्तार वर्णन है। ऐसे हिंदू समाज को देखकर बच्चन को क्षोभ और दुख होता है क्योंकि एक प्रबुद्ध और संवेदनशील प्राणी होने के नाते वे जानते हैं कि हिंदू समाज के विकास में सबसे बड़ी बाधा यही है। वे लिखते हैं– 'हिंदू समाज अपने यहाँ से निकालना ही जानता है, अपने में सम्मलित कर लेना, आत्मसात कर लेना नही। किसी समय–जब हिंदुत्व स्वस्थ था – उसमें दूसरों को जज्ब कर लेने की बड़ी जबरदस्त ताकत थी। अब जब हिंदुत्व अस्वस्थ हो गया तो उसमें दूसरों को अपना लेने की षक्ति न रह गई या यह भी कह सकते हैं कि जब से उसने दूसरों को अपनाना बंद कर दिया तब से वह अस्वस्थ हो गया और कालांतर में तो इतना कमजोर हो गया कि उसको केवल छूकर उसके अंगों को गिरा लेना मामूली बात हो गई।'[4]

बच्चन यह सब क्यों कह रहे थे ? क्यों कि वे उस समाज को बड़ी सूक्ष्मता और गहराई से देख रहे थे जो सदियों से जातियों के चौराहे पर खड़ा है। बच्चन स्वयं जाति–बहिश्कृत थे क्यों कि उनके मन से अछूतों को अछूत समझने की बात बिल्कुल ही निकल गई थी। और ये अछूत कौन थे ? एक तो भारतीय वर्णाश्रम – व्यवस्था के अनुसार समाज का चौथा वर्ण और दूसरे जिन्हे समाज के स्थापित नियमों के विरूद्ध काम करने पर बहिश्कृत कर दिया गया। जहाँ तक समाज के इस चौथे वर्ण का प्रष्न है, बच्चन उनकी असहायता और दुर्दषा का वर्णन करते हुए चम्मा चमारिन का उल्लेख करते हैं जिसने उन्हे बचपन में दूध पिलाया था। हिंदू परिवारों में सामान्यतः देखा जाता है कि संतान की आयु और स्वास्थ्य की कामना करते हुए अनेक प्रकार से दान–पुन्य, पूजा–पाठ आदि कर्म–काण्ड किए जाते हैं। परंतु इन कर्म–काण्डों में भी किस तरह जाति आधारित भेद–भाव, उससे उत्पन्न अपमान और सूक्ष्म हिंसा का भाव होता है, यह बच्चन जैसे संवेदनषील कवि हृदय को ही दिखाई देता है, षेश सभी के लिए तो ये सहज, स्वाभाविक कर्म हैं, जिनके अनुसार जीवन चलता है। बच्चन लिखते हैं– 'एक तस्वीर मेरी आँखों के सामने है। मेरा जन्मदिन है। पाँच प्रकार के अन्न पाँच रंगी – छूही टोकरियों में भरकर आँगन में रख दिए गए हैं। चम्मा भी आई है। उसे एक नई बूटीदार धोती दी गई है, जिसे पहन कर वह दरवाजे पर एक तरफ सिमटी खड़ी है कि उससे कोई छू न जाए, जैसे छू जाए तो अपराध उसी का समझा जायेगा। मुझसे कहा गया है कि टोकरियों को लात मारूँ। परिपाटी यह थी कि जो अन्न भूमि पर गिर जाता था, वह चमारिन का होता था, षेश अन्य प्रजा वर्ग का। ब्राह्मण देवता को तो थाली में सीधा सजाकर समर्पित किया जाता था। – – – हिंदू समाज ने जन–जन के बीच ऊँच–नीच का बोध कटु–बोध कराने के लिए कैसे–कैसे अजीब तरीके निकाले हैं।'[5] ऊँच–नीच का यह भेद–भाव सिर्फ ब्राह्मण और गैर ब्राह्मण तक ही सीमित नही है। जातियों के अंदर उपजातियाँ और संम्प्रदायों के अंदर उपसंप्रदाय और सबकी अपनी–अपनी मान्यताएँ, अपनी–अपनी मानसिकता, जो उन्हे समाज से जोड़ती नही अपितु तोड़ती है। बच्चन लिखते हैं– 'हिंदू समाज में अछूतपन की भी श्रेणियाँ दर–श्रेणियाँ हैं। मुझे आष्चर्य और क्रोध तो तब होता जब घर की कहारिन चमार के छुए बर्तनों को माँजने से इन्कार कर देती।'[6]

जाति–पाँति और छूआछूत का यह रोग सिर्फ घर–परिवारों में ही नहीं है, मंदिरों–मस्जिदों में भी है। बल्कि कहा जाए कि धार्मिक मठाधिसों से ही घरों में आया है। शैव, शाक्त, वैष्णव – जाने कितने सम्प्रदायों और अग्रवाल, कायस्थ, जैन – कितनी जातियों में बँटा हिंदु समाज – भगवान के मंदिरों में भी सवतंत्र नहीं है। और यह दोष राम और कृष्ण का तो नही, उनके ठेकेदारों का है। अस्तित्वहीनता और लघुता का बोध कराती इस प्रकार की घटना का उल्लेख करते हुए बच्चन लिखते हैं– 'बड़की के कृष्ण–मंदिर में अन्नकूट के दिन माँ ने मुझे प्रसाद लेने भेजा। प्रसाद परोसने के पूर्व एक गोसाई जी मेरे सामने आए, बोले, कायस्थ हो ? कायस्थ ? – यह अग्रवालों की पंगत है, तुम अलग बैठ जाओ। मुझे बहुत बुरा लगा, मैंने कहा, भगवान के मंदिर में या तो भगवान हैं या भक्त। जात–पाँत बाहर के लिए है, भगवान के दरबार के लिए नहीं; यहाँ भी जात–पाँत, ऊँच–नीच का भेद–भाव किया जाता है तो यह भगवान का मंदिर नही, गोसाई खाना है।'[7] बाह्याडम्बरों और कर्म–कांडों की नीव पर खड़ा हिंदू समाज ऐसे विद्रोही को अधिक दिन सहन नही करता और यही बच्चन के भी साथ हुआ। अपने विशुद्ध मानवतावादी और विद्रोही विचारों के कारण एक दिन ऐसा भी आता है जब वे जाति–बहिष्कृत कर दिए जाते हैं। हिंदू समाज में यही अछूतों की दूसरी श्रेणी है।

बच्चन जाति– बहिश्कृत हुए, इसका कारण यह था कि उन्होने एक ऐसे परिवार में भोजन कर लिया था जो पहले से ही समाज–बहिश्कृत था। इस प्रसंग में बच्चन की भावुकता, क्रांतिकारिता और विषुद्ध मानवीय रूप के दर्षन होते हैं और साथ ही हिंदू

समाज की सड़ी गली प्रथाओं की भी, जो आज के भारतीय समाज में भी समाप्त नही हुई हैं बल्कि कहीं तो उसी रूप में और कहीं रूप बदल कर उनकी वृद्धि ही हुई है। बच्चन बताते हैं 'मोहतषिम गंज में एक कायस्थ परिवार था। पति की मृत्यु हो गई – विधवा कई बच्चों को लेकर कहाँ जाए ? बाहर से आए एक सिख सरदार ने उसे बिठा लिया। थोड़े दिनों बाद सरदार की भी मृत्यु हो गई। परिवार समाज बहिश्कृत हो गया, यानी रोटी–बेटी का व्यवहार बंद।'[8] बच्चन इस परिवार में भोजन करना स्वीकार कर लेते हैं ताकि उस परिवार की सयानी बेटी का विवाह एक अच्छे कायस्थ परिवार में हो जाए क्योंकि लड़के वालों ने यह षर्त रखी थी कि अगर दो–चार अच्छे कायस्थ घरों के लोग उनके यहाँ रोटी खा लें तो वे विवाह के लिए राजी हैं। – – –बिरादरी के दकियानूस इस पर जले–भुने बैठे थे।

इसलिए जब उनके भाई षालिग्राम के गौने की दावत थी जिसमें परिवार के लोगों और निकट संबंधियों को निमंत्रण दिया गया था तो कोई नहीं आया। – – – 'तब किसी कहारिन ने बताया कि बाबू मोहनलाल हमारे यहाँ खाना खाने इसलिए न आए थे कि मैंने बहिश्कृत परिवार में भोजन कर लिया था। मेरे हरिजनों के साथ खाने–प. ीने की बात वे जानते ही थे, और उन्होने हमारे सब निकट संबंधियों को आगाह कर दिया था कि जो हमारे यहाँ भोजन करेगा वह जाति–च्युत कर दिया जायगा। इसी डर से कोई हमारे यहाँ नही आया था।'[9] इस प्रसंग में समाज की निरंकुषता और निर्ममता, उसके परिपेक्ष्य में व्यक्ति की चिंता और दारुणता, उसका भय और अपमान तथा बच्चन की उदारता और उनका आक्रोष एक साथ प्रकट हुआ है। वे लिखते हैं– 'निमंत्रण न स्वीकार करना मैं समझ सकता था। न आना था तो सूचित करने की भलमंसी तो दिखानी थी, पर वे तो हमें अपमानित करना चाहते थे। पिताजी बहुत ही दुखी हुए – बिरादरी से कट जाने के भय से वे काँप उठे, अभी उनकी एक लड़की ब्याहने को थी। मैंने पिताजी को समझाया कि हमें बिरादरी ने छोड़ दिया है तो अब हम मानव परिवार के सदस्य हैं। मुझे हिंदू समाज का सारा ढाँचा इतना रुग्ण, सड़ा, गला, दुर्गंधित इससे पहले कभी नही लगा।'[10]

दरअसल यह जो समाज है, उसके हाथों में अपरिमित षक्तियां हैं, उसकी सत्ता सर्वोपरि है और अपनी सत्ता के नषे में चूर वह उस अहंकारी रावण की तरह है जिसके दस सिर हैं, जिन्हे काटते–काटते व्यक्ति मानव निस्तेज हो जाता है, असहाय हो जाता है। बच्चन जाति बहिश्कार की एक अन्य घटना का वर्णन करते हैं जिससे हिंदू समाज की सच्चाई बेपर्दा हो जाती है। बच्चन एक खत्री परिवार का वर्णन करते हैं जिसमें लड़के राजा का संबंध मुसलमान लड़कों के साथ था। इसलिए बिरादरी ने यह घोशणा कर दी थी कि यदि परिवार राजा से अपना संबंध नहीं तोड़ता तो कोई खत्री परिवार उस घर की लड़की से विवाह नहीं करेगा। मजबूरन माँ ने अपने पुत्र को घर से निकाल दिया। बच्चन लिखते हैं –'राजा कभी–कभी आता तो बाहर बैठता ; माँ, जो कुछ भी घर में खाने–पीने को होता, उसके सामने रखती, और ड्योड़ी पर बैठकर बिरादरी के इस अत्याचार पर आठ–आठ आँसू बहाती। बच्चन लिखते हैं – उसने अपनी कमाई से अपनी बहन की षादी के लिए रूपया जोड़ा, सारा सामान जुटाया, बिना घर में पाँव रखे। विदा के समय वह नीम के पेड़ के नीचे खड़ा रो रहा था। बहन जब डोली में बैठने लगी तो अपने भाई से भेंटने के लिए नीम की ओर बढ़ी पर ससुराल वालों ने उसे रोक दिया। राजा को नीम के तने पर सिर पटक–पटक कर बिलखते हुए मैंने अपनी आँखों से देखा था। ––– हिंदुओं की छुआ–छूती नीति ने कितने अनर्थ किए हैं, और उनकी सामाजिक रूढ़ियाँ कितनी क्रूर और निर्मम हो सकती है।'[11]

जाति–बहिष्कार के इन दोनों प्रसंगों में एक में समाज का स्वीकार है तो दूसरे में प्रतिकार; एक में समर्पण है तो दूसरे में विद्रोह। जाति–बहिष्कार के दोनो प्रसंग लगभ. ाग एक जैसे हैं – पर उनमें अंतर है उस सूक्ष्म लकीर का, जिसके लांगते ही व्यक्ति शंकराचार्य हो जाता है। यह समाज शंकराचार्य तक को जाति–बहिष्कृत किए बिना नही रहता, भले ही वे कितने बड़े विद्वान, आचार्य क्यों न हो ? 'शंकराचार्य की माता का देहावसान हो जाता है। समाज कहता है– हम तुम्हारी माँ की अर्थी उठाने नहीं आयेंगे। – – – अब तुम्हे अकेले की असर्मथता और समाज के सामर्थ्य का पता चल जायेगा। यही साधारण मनुष्य की पराजय स्वीकार करने की घड़ी है। – – – पर असाधारण मनुष्य समाज की इस चुनौती को स्वीकार करता है। शंकराचार्य साध. ारण मनुष्य नहीं थे। वे अपनी माँ का दाह–संस्कार ठीक अपने घर के सामने कर देते हैं, और एक प्रथा चल पड़ती है– आज भी नम्बूदरी ब्राह्मण अपने शव अपने घर के सामने जलाते हैं – और समाज अपना–सा मुंह लेकर रह जाता है।'[12] बच्चन शंकराचार्य की परंपरा को निभाते हैं। बच्चन कहते हैं– 'मैं समाज का मूल्य समझता हूँ। पर मैं चाहता हूँ कि व्यक्ति की स्वतंत्रता को भी बहुत सस्ता न समझ लिया जाए।'[13]

स्वतंत्रता ; एक यही चीज है जिसका भारतीय हिंदू समाज में सबसे बड़ा अभाव है – एक व्यक्ति के जीवन पर सबसे अधिक हक समाज का है, फिर परिवार का और अंत में स्वयं का, जबकि इस श्रृंखला को उल्टा होना चाहिए था। व्यक्ति के जीवन पर पहला हक स्वयं का, फिर परिवार का और अंत में समाज का होना चाहिए था। दरअसल भारतीय समाज अपनी संरचना में अत्यंत जटिलताओं और विशमताओं से भरा हुआ है। बच्चन को क्षोभ और दुख इस बात का है कि व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन नहीं है। और इस असंतुलन का सबसे बड़ा कारण है – जाति–व्यवस्थ. ा। इस सामाजिक असंतुलन से देश का कितना नुकसान हुआ, इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। यह देखना कष्टदायक है कि समाज के एक वर्ग विशेष को केवल इस आधार पर समाज और देश की मुख्यधारा से काट दिया जाए कि उसका जन्म एक विशेष जाति में हुआ है। बच्चन कहते हैं– 'भारत की आजाद सरकार चा. हती तो एक विधेयक से नाम के साथ जाति लगाना बंद करा सकती थी – कम से कम सरकारी कागजों से जाति का कॉलम हटा सकती थी। इसके परिणाम दूरगामी और हितकर होते। पर अभी उसमे कुछ भी क्रांतिकारी करने का साहस नही है।'[14]

सरकारों में यह साहस भले ही न हो पर व्यक्ति के स्तर पर यह साहस और प्रयास किया जा सकता है, जैसे बच्चन करते हैं। वे लिखते हैं– 'जिन दिनों मैं यूनिवर्सिटी में अध्यापक था, मैं बहुत से विद्यार्थियों को प्रेरित करता था कि वे अपने नाम के साथ अपनी जाति न जोड़ें –अपने को रामप्रसाद त्रिपाठी नहीं, केवल रामप्रसाद कह. ें।'[15] इसके अलावा उनके द्वारा किए गए अन्य व्यक्तिगत प्रयासों का वर्णन करते हुए बच्चन लिखते हैं– 'जब स्वतंत्र रूप से मेरा अपना घर हुआ तो अक्सर चमार ही मेरे खाना बनाने वाले रहे। – – – आजकल एक जमादार की लड़की – कमला मेरे घर में काम करती है और कभी–कभी खाना भी बनाती है। – – –सामाजिक स्तर पर कोई सुधार हो, इसके पूर्व व्यक्ति–व्यक्ति को निर्भिकता और साहस के साथ आगे बढ़ना होगा।'[16]

बच्चन की आत्मकथा से यह स्पश्ट है कि वे इन कुप्रथाओं के मात्र दृश्टा नही हैं, वे भोक्ता भी हैं और चिंतक भी। व्यक्तिगत प्रयासों से वे इन घृणित रिवाजों का उन्मूलन करने का हौंसला भी रखते हैं तथा राजनीतिक और व्यवस्था के स्तर पर समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। बच्चन की गहन अध्ययनशीलता और व्यापक अनुभव मिलकर आत्मकथा के रूप में जिस रचनाशीलता को जन्म देते हैं वह निश्चित ही उनके गहरे समाज–बोध का परिणाम है।

REFERENCES

1. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – मुखपृश्ठ द्य 2. कबीर – हजारीप्रसाद द्विवेदी – पृश्ठ 259 द्य 3. नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृश्ठ 20 द्य 4. नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृश्ठ 232 द्य 5. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृश्ठ 87 द्य 6. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृश्ठ 88 द्य 7. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृश्ठ 139 द्य 8. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृश्ठ 176 द्य 9. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृश्ठ 177 द्य 10. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृश्ठ 177 द्य 11. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृश्ठ 106 द्य 12. नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृश्ठ 20–21 द्य 13. नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृश्ठ 21 द्य 14. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृश्ठ 88 द्य 15. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृश्ठ 88 द्य 16. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृश्ठ 88 द्य